ब्रह्मा बाबा की संक्षिप्त जीवनी

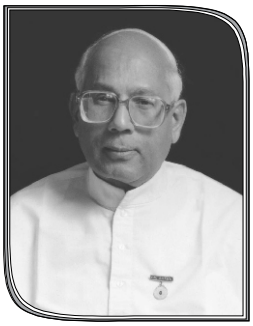

यहाँ संक्षिप्त में दादा लेखराज का जीवन वृतांत दिया गया है, जिन्हें ईश्वर ने अपने माध्यम के रूप में अपनाया। उन कुछ घटनाओं का भी वर्णन किया गया है जिन्होंने उन्हें ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के लिए प्रेरित किया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्माकुमारी संस्था ब्रह्मा बाबा को गुरु या ईश्वर नहीं मानती बल्कि ईश्वर का माध्यम मात्र मानती है।

दादा लेखराज के आंतरिक रूपांतरण की कहानी वर्ष 1936-37 से जुड़ी हुई है। यह वह समय था जब भारत के लोग राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए भीषण संघर्ष कर रहे थे। लोग अपने राजनैतिक शत्रुओं से तो लड़ रहे थे किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि हर किसी ने काम-वासना, आसक्ति, लोभ, क्रोध, अभिमान जैसी बुराइयों से या तो समझौता कर लिया था या उनके आगे समर्पण कर दिया था। धर्म के नाम पर फूहड़ रिवाजों और अंधविश्वासों का बोलबाला था। अधिकाधिक शक्तिशाली हथियारों के रूप में घृणा और हिंसा को अभिव्यक्ति मिल रही थी और भीतर ही भीतर एक विश्वयुद्ध की तैयारी हो रही थी। कार्ल मार्क्स तथा सिग्मंड फ्रायड के विचारों के कारण आध्यात्मिक विचारों की अपरिमित हानि हो रही थी। विश्व को इस गंभीर संकट से उबारने के लिए मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन अत्यावश्यक था।

इसे कौन कर सकता था?

बिल ड्यूरैण्ड ने कहा है कि मनुष्य का मन एक कलन (कैलकुलस) से दुखी हो जाता है तो वह सृष्टि के रहस्यों को कैसे समझ सकेगा? इसलिए ईश्वर, स्वयं सृष्टिकर्त्ता के लिए जरूरी था कि वे रहस्यों की व्याख्या करते और उसके लिए ब्रह्मा बाबा जैसे श्रेष्ठजन की आवश्यकता थी। दादा लेखराज हैदराबाद-सिंध (जो कि अब पाकिस्तान में है) के एक उपनगर में एक प्रधानाध्यापक के घर पैदा हुए थे। अपनी व्यवसायिक क्षमता, मिलनसार स्वभाव तथा उद्यमशीलता के कारण वे बड़े सफल जौहरी बने और कोलकाता तथा मुम्बई में उनकी मुख्य व्यवसायिक शाखायें थीं। वे स्नेहमय स्वभाव के थे और उन्हें 'दादा' कहा जाता था।

यद्यपि वे धनी थे तथापि वे अत्यंत धार्मिक व्यक्ति थे। वे देवता श्री नारायण के परम भक्त थे और प्रतिदिन यहाँ तक कि जब रेल-यात्रा कर रहे होते थे तब भी नियमित रूप से श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ किया करते थे। उन्होंने वाराणसी, अमरनाथ तथा ऐसे ही अन्य स्थानों का भ्रमण इसलिए किया क्योंकि उनके अंतर्मन में अनुभवातीत सत्य को जानने की ललक थी। अमरनाथ की एक तीर्थ यात्रा में उन्होंने एक पुजारी से पूछा था कि क्या अमरनाथ में शिव का 'शिवलिंग' अपने आप बन जाता है या उसे मनुष्य के हाथों द्वारा आकार प्राप्त होता है? इस प्रकार वे जिज्ञासु थे और अंधविश्वासी नहीं थे।

जब भी राजा और राजकुमार उनके राज-अतिथि हुआ करते थे, वे केवल शाकाहारी भोजन से ही उनका आतिथ्य करते थे और मदिरा से सर्वथा परहेज करते थे। जब एक भोज में मांस और मदिरा के अभाव में एक अतिथि ने यह कहा कि भोज बेमज़ा और बेस्वाद है तो दादा ने मज़ाक में कहा कि चूँकि वे उन्हें कागज के नोटों के बदले में चमकीले रत्न और हीरे देते हैं, इसलिए वे उनके लिए अपने सिद्धांतों को त्यागने के लिए बाध्य नहीं हैं। उनकी एक प्रिय कहावत थी, ''धरत परिये पर धर्म न छोड़िए'' अर्थात् यदि हमें मृत्यु का भय हो तो भी हम अपनी धार्मिक

चेतना का हनन नहीं करेंगे और अपने नैतिक सिद्धांतों को नहीं त्यागेंगे।

दादा के हृदय में महिलाओं के प्रति अपार सम्मान था। वे अपनी पत्नी जसोदा जी के प्रति स्नेह और आदर प्रकट किया करते थे। वे महिलाओं का इतना सम्मान करते थे कि वे श्रीलक्ष्मी द्वारा श्रीनारायण की चरण-सेवा के दृश्य को पसंद नहीं करते थे यद्यपि नारायण उनके प्रिय तथा सम्मानित देवता थे। दादा की दृष्टि में यह दृश्य नारियों की दासता का प्रतीक था। एक बार उन्होंने एक चित्रकार को बुलाया और उनसे कहा कि चित्र से श्रीलक्ष्मी के इस दृश्य को मिटा दें और उन्हें मुक्त कर दें।

एक दिन जब दादा आत्मा के गहन मनन-चिंतन में बैठे हुए थे तो उन्होंने स्वयं को अपने संपूर्ण भौतिक परिवेश से विमुक्त पाया। उन्हें विनाश के अनेक भयंकर दृश्य दिखाई दिए। उन्होंने देखा कि प्रलय और भूकंपों में अपार नर-नारियों और शिशुओं की प्राणहानि हो रही है। उन्होंने भीषण परिणामों वाले रक्त रंजित गृह-युद्ध भी देखे। उन्होंने यह भी देखा कि एक परमाणविक महाज्वाला विश्व के एक बड़े भाग को पल भर में नष्ट कर रही है। दादा भयभीत हो उठे और चीख पड़े – ''हे प्रभु! यह इतना भयंकर है कि मैं सहन नहीं कर सकता। निश्चय ही यह विश्व-विनाश है। हे प्रभु, हे स्वामी, मुझे अपने सुखप्रद एवं आनंदप्रद रूप के दर्शन कराइए क्योंकि मैं यह सब और अधिक नहीं देख सकता।''

पल भर में दृश्य बदल गया और उनके समक्ष एक नया दृश्य आया। अब उन्हें 'चतुर्भुज विष्णु' दिखाई दिये। एक आवाज आई ''मैं चतुर्भुज विष्णु हूँ और तुम भी वैसे ही हो'' (अहं चतुर्भुज विष्णु तत्त्वम)। इसका अर्थ है, ''तुम्हारे मूल रूप में तुम जो कि आत्मा हो, स्वर्ग के राज्य के एक देवता – श्री नारायण थे।'' यह इनके लिए एक आह्वान था कि जागो और अपने आध्यात्मिक स्वरूप के उच्चतम कुल को प्राप्त करो।

एक दिन जब वे एक विद्वान संत का प्रवचन सुन रहे थे, जिसका आयोजन उन्हीं के घर पर हुआ था, तो उनके अंतर्मन में यह इच्छा जागी कि वहाँ से उठकर एकांत में चले जायें, मानो कि ईश्वरीय पुकार आ रही हो। दादा प्रवचन के बीच से ही, अपने स्थान पर से उठ खड़े हुए और अपने प्रार्थना-कक्ष में चले गये। भले ही वह उनके सामान्य नियम के विरुद्ध था। इस असामान्य घटना को देखकर उनकी पत्नी जशोदा जी और उनकी पुत्रवधू बृजइंद्रा (जो कि उस समय राधा कहलाती थी) भी उनके पीछे हो ली। उन्हें बाबा के नेत्रों में उज्ज्वल आभा देखकर आश्चर्य हुआ। बाबा के मुखमण्डल से अकस्मात् दिव्य प्रकाश बिखरने लगा और पूरे कक्ष में फैल गया। उन्हें यह विचित्र अनुभूति हुई कि वे अपने शरीर-भान से विमुक्त हो गये हैं और उन पर दिव्य शांति का अवतरण हुआ है। परम शांति के वातावरण में बाबा के मुख से ईश्वर के ये शब्द निकले –

''निज आनंद स्वरूपम्
शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
ज्ञान स्वरूपम्
शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
प्रकाश स्वरूपम्
शिवोऽहम् शिवोऽहम्।''

जिनका अर्थ है :-

''मैं आनंदमय स्वरूप हूँ,
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।
मैं ज्ञानमय स्वरूप हूँ,
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।
मैं प्रकाशमय स्वरूप हूँ,
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।''

निराकार शिव का उनके शरीर पर अवतरण हुआ था और दादा लेखराज के माध्यम से शिव ने अपना अनुभवातीत परिचय दिया था। अब दादा लेखराज, शिव के माध्यम और साधन बन गये थे और अब उनके माध्यम से शिव अपना ईश्वरीय ज्ञान देने लगे, जो कि दादा के लिए और अन्य सुनने वाले लोगों के लिए नया ज्ञान था।

अब दादा ने हैदराबाद-सिंध में जशोदा निवास नामक अपने घर में वर्ष 1936 में नियमित रूप से सत्संग या धार्मिक सभा का आरंभ किया।

उसका स्वरूप एक पारिवारिक सत्संग का था किन्तु बहुत से लोग उसमें आने लगे क्योंकि वे ऐसा करने के लिए प्रेरित हो रहे थे। बाबा ने उनसे कहा कि वे पूर्ण शुद्धता का जीवन बितायें, कामवासना भीषणतम बुराई है और देह-अभिमान सभी बुराइयों की जड़ है।

इन सभाओं में लोग आकर पवित्र ॐ का जप किया करते थे इसलिए यह सत्संग 'ओम मण्डली' कहलाने लगा। पुरुष, महिलायें तथा बच्चे भी इस सत्संग में आते थे। इन लोगों में एक थी किशोरी कन्या 'ओम राधे' जो कि सर्वाधिक होनहार थी। कालांतर में उसे आध्यात्मिक माता की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और वह ईश्वरीय ज्ञान में उत्कृष्टता, योग और शुद्धता की उच्चता तथा अन्य लोगों की आध्यात्मिक पालना करने के कार्य के कारण 'जगदम्बा सरस्वती' कहलाई।

बाबा ने अक्तूबर 1937 में एक प्रबंध समिति गठित की जिसमें महिलायें थीं और 17 फरवरी, 1938 को उन्होंने अपना वसीयतनामा लिखा जिसमें उन्होंने अपनी संपत्ति इस न्यास को दे दी। इस बीच देश का विभाजन हो गया और कराची पाकिस्तान में गया। इस संस्था को सन् 1951 में भारत के लोगों से निमंत्रण मिला कि वे भारत आकर ईश्वरीय सेवा का कार्य करें इसलिए यह संस्था भारत चली

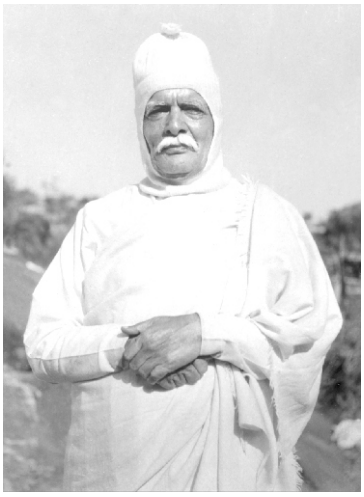

आई और तब से उसका मुख्यालय राजस्थान में माउण्ट आबू में स्थित है और उसका सेवा-कार्य बढ़ता जा रहा है। सन् 1965 में मातेश्वरी सरस्वती ने अपने पार्थिव शरीर को छोड़ दिया।

अब तक ईश्वरीय सेवा गतिशील हो गई थी। ईश्वरीय संदेश का दूर-दूर तक प्रसार करने के लिए समर्पित, आत्म बलिदानी योगियों के एक संवर्ग का निर्माण किया गया था। ये अधिकांशत: बहनें थीं जिनके व्यवहारिक आचरण में वह शुद्धता प्रतिबिंबित होती थी, जो कि सतयुग में होगी। अब वे कार्यक्रमों का आयोजन करने लगी थीं, केन्द्रों का संचालन करने लगी थीं, उन्नयनकारी प्रवचन देने लगी थीं, श्रद्धालुओं की आध्यात्मिक समस्यायें हल करने लगी थीं, अपने आध्यात्मिक अन्वेषण में स्थिर हो गई थीं तथा अब वे अति गुणी योगिनियाँ थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि बाबा ने अपना कार्य पूरा कर लिया था और वे कार्यभार दूसरों को सौंपना चाहते थे ताकि उन लोगों को सेवा के व्यापक क्षेत्र में अधिक अनुभव प्राप्त हो, इसलिए उन्होंने 18 जनवरी, 1969 को रात्रिकालीन प्रवचन देने के कुछ ही मिनटों पश्चात् अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया। जो लोग उनके संपर्क में थे उन्हें पिछले कुछ समय से परिपूर्णता की भासना मिली थी और अनासक्ति का अनुभव किया था। वे बाबा के मुखमण्डल से प्रगाढ़ आभा को बिखरता हुआ देखते थे और उनके सिर के चतुर्दिक् एक देदीप्यमान प्रभामण्डल देखा करते थे। बाबा ने अब वह कार्य पूरा कर लिया था जो कि उन्हें अपने भौतिक रूप में करना था और अब वे अस्तित्व के एक उच्चतर लोक में पहुँच चुके थे। अब वे एक देवदूत बन गये थे और मुक्त संचरण की तथा स्थूल और भौतिक रूप से स्वतंत्रता की इस अवस्था में अब उनकी सेवा-शक्ति लाखों गुणा बढ़ गई थी।

अपने देवदूत लोक से बाबा, जो कि देवदूत हैं, अब शिव बाबा के साथ स्वरैक्य साधकर विश्व में हर कहीं जाते हैं और अनेक मानव-आत्माओं को ईश्वरीय ज्ञान, शुद्धता तथा शांति प्रदान करते हैं। इस प्रकार शिव बाबा और ब्रह्मा बाबा, जिन्हें कि हम 'बाप-दादा' के नाम से जानते हैं, स्वर्ण युग की पुन: स्थापना का कार्य मिलजुल कर कर रहे हैं। ❖